Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

वैदिक साहित्य में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

प्रो0 विनय कुमार विद्यालंकार
प्रोफेसर संस्कृत विभाग, डीन शिक्षा प्र0 संकाय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
आरती चौधरी
शोधार्थी, योग विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर।

सारांशिका : प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य एवं आर्ष ग्रन्थों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप का विवेचनात्मक अध्ययन की चर्चा की गयी है। ईश्वर के अर्थ एवं स्वरुप का वर्णन वेद–उपनिषद्, दर्शन एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदि आर्ष ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों में जहाँ जीव (जीवात्मा) के लिए 'पुरुष' शब्द को प्रयुक्त किया गया है, तो वहीं ईश्वर को 'परम पुरुष' की संज्ञा से सुशोभित किया गया है। ईश्वर कोई जातिवाचक शब्द न होकर एक गुणवाचक शब्द है जिसमें ईश्वर में निहित गुणों का समावेश होता है। ईश्वर के गुणों के आधार पर उसका मनन–चिन्तन एवं स्मरण किया जाता है। इस जगत में जो कुछ चलायमान है, वह उस ईश्वर द्वारा छाया हुआ है। इस विशाल सृष्टि का स्वामी एवं समस्त ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण ईश्वर को भगवान कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट किया गया है कि इस संसार में जो–जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उन सभी में ईश्वर का तेज विद्यमान है। योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं कि क्लेश, कर्म, विपाक और आशय– इन चारों से जो सम्बन्धित नहीं है, जो समस्त पुरूषों से उत्तम है, वह ईश्वर है। उस ईश्वर का वाचक प्रणव है। इस प्रणव का जप करने से मनुष्य को चेतना का अधिगम अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और वह अन्तरायों अर्थात् सांसारिक दुःख–क्लेशों से मुक्त होकर ईश्वरीय आनन्द में लीन होने लगता है।

कूट शब्द : वेद, उपनिषद्, गीता, ईश्वर, भगवान, परमात्मा, परम पुरूष, पुरूष, प्रणव।

इस संसार में ईश्वर के अर्थ एवं स्वरूप को लेकर अनेक मत–मतान्तर हैं। वैदिक साहित्य में ऋषियों द्वारा ईश्वर के स्वरुप की व्याख्या भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से की गयी है। ईश्वर के अर्थ एवं स्वरुप को स्पष्ट करने हेतु वेद–उपनिषद् आदि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित ग्रंथों में विस्तृत वर्णन किया गया है। ऋषियों, महापुरुषों एवं विद्वानों द्वारा इस गूढ़ विषय को स्पष्ट करने हेतु अपने विचार एवं मतों को प्रतिपादन अपने–अपने दृष्टिकोणों से किया गया है। ईश्वर के अर्थ एवं स्वरुप पर चिन्तन करने से पूर्व हमें यह समझना चाहिए कि जिस प्रकार आत्मसत्ता रूपी चेतना के अभाव मानव शरीर संचालित नहीं हो सकता है, ठीक उसी प्रकार ईश्वरसत्ता रूपी परम चेतना के बिना इस विशाल सृष्टि के संचालन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अर्थात् ईश्वर के रूप में परम चेतन तत्व इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन कर रहा है।

वेदों–उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, गीता व दर्शन आदि शास्त्रों में जहाँ जीव (जीवात्मा) के लिए 'पुरुष' शब्द को प्रयुक्त किया गया है, तो वहीं ईश्वर को 'परम पुरुष' की संज्ञा से सुशोभित किया गया है। अर्थात् पुरुषों में श्रेष्ठ परम चेतना से युक्त पुरुष विशेष ही ईश्वर है। इस प्रकार आत्माओं में श्रेष्ठ आत्मा (चेतना) को परमात्मा के नाम से जाना जाता है। शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ईश्वर कोई जातिवाचक शब्द न होकर एक गुणवाचक शब्द है जिसमें ईश्वर में निहित गुणों का समावेश होता है। ईश्वर के गुणों के आधार पर उसका स्मरण किया जाता है

और ईश्वर के पर्यायवाची शब्द उसके गुणों को स्पष्ट करते है। ईश्वर शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ईशावास्योपनिषद् में उपदेश किया गया है–

ओ३म् ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः स्यिस्विद्धनम्।।

(ईशावास्योपनिषद् 01)

इस जगत में जो कुछ चलायमान है, वह उस ईश्वर द्वारा छाया हुआ है। उसका त्यागभाव से प्रयोग कर। लालच न कर। यह किसका है ?[1] यहां पर सम्पूर्ण जगत ईश्वर के द्वारा छाया हुआ अथवा ईश्वर से आच्छादित कहा गया है। इस मंत्र में ईश्वर से अभिप्रायः सम्पूर्ण जगत में विद्धमान चेतन तत्व से लिया गया है और ईश्वर की विशेषता अथवा उसकी महानता सम्पूर्ण सृष्टि को धारण करने के रुप में वर्णित की गयी है। उस महान ईश्वर का स्वरुप कैसा है ? इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट करते हुए पुनः उपनिषद् में कहा गया है–

स पर्यगाच्छुकक्रमकायमव्रणममस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद्धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(ईशावास्योपनिषद् 08)

वह (परमात्मा) सब स्थान पर पहुँचा हुआ, शुद्ध, बलवान, शरीर–रहित, अक्षत (घायल न किया जाने योग्य), स्नायु से रहित, निर्मल, पाप से अबद्ध है। महान ज्ञानवान मनीषी (सर्वज्ञ और मनीषी), सबसे ऊपर (सर्वोत्कृष्ट), स्वयं ही प्रकट होने वाला, जो कुछ जैसा है उसे वैसा ही प्रकट करने वाला और अनादि प्रज्ञाओं (जीवात्माओं) के लिए जो जैसा है उसे वैसा ही उसके साथ व्यवहार करने वाला है, अर्थात् न्यायकर्ता है।[2] ईश्वर को भगवान शब्द से भी पुकारा जाता है। भगवान शब्द की उत्पत्ति **भग और वान के** मिलने से होती है। भग का अर्थ सृष्टि और वान का अर्थ स्वामी होता है। इस प्रकार जो इस सृष्टि का स्वामी है उसे भगवान कहा जाता है। भगवान शब्द भग धातु से होती है। भग से अभिप्रायः ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य से होता है और वान का अर्थ धारण करना होता है। इस प्रकार इन सभी श्रेष्ठ गुणों का धारण करने वाली सत्ता को भगवान के नाम से पुकारा जाता है। ईश्वर के दिव्य स्वरुप का वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में उपदेश किया गया है–

अहंमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिच्श्र मध्यं च भूतानामन्त एव च।।

(गीता 10/20)

हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतो का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूँ।[3] इस प्रकार यहां पर ईश्वर के सर्वव्यापक स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस संसार की प्रत्येक श्रेष्ठ और उत्तम पदार्थ ईश्वर की ही कृधि हैं। इसका उपदेश करते हुए कहा गया है–

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्वानां कपिलो मुनिः।।

(गीता 10/26)

मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।[4] यहां पर उपदेश किया गया है कि इस संसार में जो–जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उन सभी में ईश्वर का तेज विद्यमान है। सर्वत्र विद्यमान ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं–

क्लेशकर्मविपाकाशयैपरामृष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः।

(पा0 यो0 सू0 1/24)

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय– इन चारों से जो सम्बन्धित नहीं है, जो समस्त पुरूषों से उत्तम है, वह ईश्वर है।[5] इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि सामान्य पुरुष अर्थात् मनुष्य अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों के बंधन में बंधा रहता है। इसके साथ–साथ मनुष्य पुण्य, पाप, पुण्य और पाप मिश्रित तथा पुण्य–पाप से रहित अर्थात् निष्काम कर्म नामक चार प्रकार के कर्मों का कर्ता है। मनुष्य कर्मों का विपाक (फलों) का भोग करता है और कर्मों से जो संस्कार बनते हैं, उन संस्कारों से युक्त रहता है परन्तु इन सभी से मुक्त पुरूषों में विशेष पुरूष ही **ईश्वर** है। ईश्वर का क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से न कभी सम्बन्ध था, न है और न होने वाला है। यही नहीं साधारण पुरुषों से श्रेष्ठ और बंधनों से मुक्त ईश्वर विशेष है। इसलिए योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि ईश्वर को 'पुरुष विशेष' पद से सम्बोधित करते हुए उपदेश करते हैं–

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।।

(पा0 यो0 सू0 1/25)

अर्थात् उस ईश्वर में सर्वज्ञता की बीज और ज्ञान निरतिशय है। ईश्वर के अन्य महत्वपूर्ण गुण प्रकाश डालते हुए महर्षि द्वारा उपदेश किया गया है कि मनुष्य चाहे कितनी ही ज्ञानी क्यों न हो किन्तु फिल भी वह अल्पज्ञ ही रहता है और उसके ज्ञान का क्षय होता रहता है किन्तु इससे भिन्न ईश्वर में सर्वज्ञता का गुण विद्यमान है अर्थात् वह सब कुछ जानने वाला है और ईश्वर के ज्ञान का कभी क्षय नहीं होता है अपितु वह ज्ञान निरतिक्षय है। वह पुरुषों में परम आत्मा अर्थात् परमात्मा सभी ज्ञानों का मूल स्रोत है। इसे स्पष्ट करते हुए आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के प्रथम नियम में उपदेश करते हैं– सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सका आदि मूल परमेश्वर है।[6] सब सत्य विद्याओं का आदि मूल होने और सर्वज्ञ होने के कारण ईश्वर सभी गुरूओं का भी गुरू है। अर्थात् इस संसार में सबका गुरू ईश्वर ही है। इस महान गुरु के लिए परम शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह परम गुरू ईश्वर काल से परे है अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य काल के प्रभाव से मुक्त है। यह पूर्व में विद्यमान था, वर्तमान में सत्तावान है और भविष्य में भी इसी प्रकार विकाररहित रूप में बने रहने वाला है। काल का प्रभाव मनुष्य के बल, शक्ति, ज्ञान और क्षमता आदि को प्रभावित करता है किन्तु ईश्वर काल के प्रभाव से मुक्त रहता हुआ सदैव एक समान बना रहता है। ईशावास्योपनिषद् में उपदेश किया गया है–

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्च्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।[7]

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

अर्थात् परमात्मा सभी प्रकार से सदा, सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परब्रह्म से पूर्ण ही है क्योंकि यह पूर्ण उसी पूर्ण से ही उत्पन्न हुआ है और उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है। ईश्वर के अन्य गुणवाचक शब्दों पर प्रकाश डालते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के दूसरे नियम में उपदेश करते हैं– ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करने योग्य है।[8] ईश्वर को किस नाम से स्मरण किया जाये ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं–

तस्य वाचक प्रणवः।

(पा0 यो0 सू0 1/27)

उस ईश्वर का वाचक प्रणव है।[9] अर्थात् ईश्वर का प्रमुख बोधक या ज्ञान कराने वाला शब्द प्रणव (ओउम्) है। प्रणव के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। उपनिषद्कार का भाव है कि प्रणवरूपी धनुष के द्वारा मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार करने में सक्षम हो

सकता है। मानव जीवन में प्रणव उच्चारण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते है कि प्रणव का जप करते हुए ईश्वर के श्रेष्ठ गुणों का मनन–चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को चेतना का अधिगम अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और उसके अन्तरायों अर्थात् कष्टों का नाश होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ईश्वर का जप और ध्यान करने पर श्रेष्ठ ईश्वरीय गुणों का विस्तार मनुष्य के व्यक्तित्व में होने लगता है और मनुष्य क्लेशों एवं कष्टों से मुक्त होकर ईश्वरीय आनन्द के साथ जुड़ने लगता है। ईश्वरस्तुति प्रार्थना उपासना मंत्र में कहा गया है–

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजुर्वेद 25/13)

अर्थात् जो आत्मज्ञान का दाता और शारीरिक तथा आत्मिक बल का देने वाला है, सम्पूर्ण मनुष्य जिसकी उपासना करते है, विद्वान लोग जिसके शासन को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुख देने वाला है और जिसके आश्रय का अभाव अर्थात् भक्ति न करना मृत्यु अर्थात जन्म–मरण के चक्र का हेतु है, हम उस सुख स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात आज्ञापालन में तत्पर रहें।[10] इस प्रकार ईश्वर सम्पूर्ण सुख, बल और आत्मज्ञान को प्रदान करने वाला अनादि तत्व है जिसके सानिध्य से मनुष्य आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होने लगता है।

सन्दर्भ सूची

1. ईश केन कठ उपनिषद्, भाष्यकार पं0 गुरूदत्त , पृष्ठ संख्या 12
2. ईश केन कठ उपनिषद्, भाष्यकार पं0 गुरूदत्त , पृष्ठ संख्या 21
3- श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 132
4- श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 134
5- योग दर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या–26
6- सन्धा अग्निहोत्र, सम्पादक डा0 दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या–217
7- कल्याण उपनिषद् अंक, गीता प्रेस गोरखपुर,, पृष्ठ संख्या– 459
8- सन्धा अग्निहोत्र, सम्पादक डा0 दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या–217
9- योग दर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या–27
10-सन्धा अग्निहोत्र, सम्पादक डा0 दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या–68